उपदेश सारम्

(रमण महर्षि कृत)

1. **कर्तुराज्ञया प्राप्यते फलम्।**
कर्म किं परं कर्म तज्जडम्।।

जगतकर्ता की आज्ञा से (नियमानुसार) कर्मफल प्राप्त होता है। क्या कर्म सर्वश्रेष्ठ है? नहीं, वह कर्म जड़ है।

2. **कृतिमहोदधौ पतनकारणम्।**
फलमशाश्वतं गतिनिरोधकम्।।

कर्म के महासागर में अशाश्वत फल वाला कर्म पतन का कारण बनता है, तथा गति का अवरोधक है।

3. **ईश्वरार्पितं नेच्छया कृतम्।**
चित्तशोधकं मुक्तिसाधकम्।।

स्वार्थ रहित ईश्वर–अर्पण बुद्धि से किया गया कर्म चित्त शुद्ध करता है, तथा मुक्ति का साधन बनता है।

4. **कायवाङ्मनः कार्यमुत्तमम्।**
पूजनं जपश्चिन्तनं क्रमात्।।

शरीर, वाणी और मन के द्वारा किये गए पूजा, जप और चिन्तन उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने है।

5. **जगत ईशधी युक्तसेवनम्।**
अष्टमूर्तिभृद्देवपूजनम्।।

जगत के प्रति ईश्वर की बुद्धि रखकर सेवा करना ही अष्ट मूर्तिधारी ईश्वर की पूजा है।

6. **उत्तमस्तवाद् उच्चमन्दतः।**
चित्तजं जप ध्यानमुत्तमम्।।

ईश्वर की स्तुति करना उत्तम है, किन्तु इससे सूक्ष्म और श्रेष्ठ जप है। यह जप तीन प्रकार का है; उच्च, मन्द और मानस जप। यह क्रम से उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माना गया है।

7. **आज्यधारया स्रोतसा समम्।**
सरलचिन्तनं विरलतः परम्।।

तैल की धारा के तथा नदी के प्रवाह के समान किया जानेवाला ईश्वर का सरल चिन्तन ही खण्डित चिन्तन से श्रेष्ठ है।

8. **भेदभावनात् सोऽहमित्यसौ।**
भावनाऽभिदा पावनी मता।।

परमात्मा से पृथक्ता की भावना से 'वह मैं हूं' इस प्रकार की अभिदा भावना मन को शुद्ध करती है।

9. **भावशून्यसद् भावसुस्थितिः।**
भावनाबलाद् भक्तिरुत्तमा।।

समस्त भेद से रहित सत्स्वरूप में सम्यक् स्थिति ही सर्वश्रेष्ठ भक्ति है। यह अभेद भावना के बल से प्राप्त होती है।

10. **हृत्स्थले मनः स्वस्थता क्रिया।**
भक्तियोगबोधाश्चनिश्चितम्।।

मन को हृद् अर्थात् अपनी चेतन स्वरूपता में स्थित कर देना ही भक्ति, कर्म, योग एवं ज्ञान का प्रयोजन है। यह समस्त शास्त्रो और आचार्यो का निश्चित मत है।

11. वायुरोधनात् लीयते मनः।
जालपक्षिवद्रोधसाधनम्।।

प्राण के निरोध करने से मन का लय हो जाता है, किन्तु यह प्राणनिरोध पक्षी को जाल में पकड़ने के समान मन के निरोध का एक साधन है।

12. चित्तवायवश्चित्क्रियायुता।
शाखयोर्द्वयी शक्तिमूलकाः।।

मन और प्राण चेतनता और क्रियाशक्ति से युक्त हैं। ये दोनों परमेश्वर की मूल शक्ति के दो शाखायें हैं।

13. लयविनाशने उभयरोधने।
लयगतं पुनर्भवति नो मृतम्।।

मन का लय और मनोनाश यह दोनों ही क्रमशः प्राणनिरोध और मनोनिरोध से होते हैं। उनमें लय को प्राप्त हुआ मन फिर वैसा का वैसा जग जाता है, किन्तु नष्ट हुआ मन कभी लौट कर नहीं आता।

14. प्राणबन्धनात् लीनमानसम्।
एकचिन्तात् नाशमेत्यदः।।

प्राण के बन्धन से लीन हुआ मन एक वस्तु के चिन्तन से नाश को प्राप्त होता है।

15. नष्टमानसोत्कृष्टयोगिनः।
कृत्यमस्ति किं स्वस्थितिं यतः।।

जब उस उत्कृष्ट योगी का मन नष्ट हो जाता है, तब वह कृतकृत्य हो जाता है, क्योंकि वह स्वस्वरूप में स्थित हो गया है।

16. दृश्यवारितं चित्तमात्मनः।
चित्त्वदर्शनं तत्त्वदर्शनम्।।

अपने चित्त को दृश्य से परावृत्त करने पर, चित के तत्त्व, अर्थात अपनी चैतन्य स्वरूपता का बोध होता है। यह ही तत्त्व का दर्शन है।

17. मानसं तु किं मार्गणे कृते।
नैव मानसं मार्ग आर्जवात्।।

यह मन क्या है? इस प्रकार विचार करने पर यह बात ज्ञात होती है कि मन नाम की किसी वस्तु की कोई स्वतंत्र सत्ता ही नहीं है। इस प्रकार विचार का मार्ग ही सरल मार्ग है। अर्थात् यह ही वह मार्ग है जो सीधे मुक्ति के प्रासाद में पहुंचाता है।

18. वृत्तयस्त्वहं वृत्तिमाश्रिताः।
वृत्तयो मनो विद्ध्यहं मनः।।

समस्त वृत्तियां 'अहं वृत्ति' पर आश्रित हैं। अतः 'अहं वृत्ति' भी मन है। क्योंकि वृत्ति ही मन है।

19. अहमयं कुतो भवति चिन्वतः।
अयि पतत्यहं निजविचारणम्।।

यह अहं कहां से आता है, इस पर विचार करने पर आश्चर्यजनक तथ्य सामने आता है कि यह अहं ही गिर जाता है, अर्थात् उसका मानो अस्तित्व ही नहीं रहता है।

20. अहमिनाशभाजी अहमहंतया।
स्फुरति हृत्स्वयं परमपूर्णसत्।।

अहं के नाश होने पर उसके साररूप परिपूर्ण सत् तत्त्व अहं की तरह से स्फुरित होता है।

21. इदमहंपदाभिख्यमन्वहम्।
अहमिलीनकेऽप्यलयसत्तया।।

यह अहं (जो अभिव्यक्त हो रहा है, उस) को केन्द्र में रखकर जब शोध करा जाए, तो उसका लक्ष्यार्थ वह होता है, जो अलय सत्तावाला तत्त्व है। जब यह अहं लीन भी होता है, उस समय भी यह अलय सत्ता ही विद्यमान है।

22. विग्रहेन्द्रियप्राणधीतमः।
नाहमेकसत् तज्जडं ह्यसत्।।

हम यह शरीर रूप विग्रह नहीं हैं, न हम इन्द्रियां हैं, न प्राण, बुद्धि और अंधकार स्वरूप हैं। किन्तु हम एक सत् स्वरूप हैं। यह प्राणादि तो जड़ और असत् रूप हैं।

23. सत्त्वभासिका चित्क्कवेतरा।
सत्तया हि चित् चित्तया ह्यहम्।।

सत् स्वरूप तत्त्व को प्रकाशित करने वाली चेतनता क्या कोई और हो सकती है? सत् रूप से चेतनता ही विद्यमान है तथा वह चेतनता हम ही हैं।

24. ईशजीवयोर्वेशधीभिदा।
सत्स्वभावतो वस्तु केवलम्।।

उपाधियां के भेद से ही ईश्वर और जीव में भेद है। सत्स्वरूप की दृष्टि से केवल एक ही वस्तु है अर्थात् अभेद है।

25. वेषहानतः स्वात्मदर्शनम्।
ईशदर्शनं स्वात्मरूपतः।।

उपाधियों का अपवाद करने पर स्वस्वरूप आत्मा का दर्शन होता है। यह ही ईश्वर का दर्शन है। ईश्वर का दर्शन अपनी आत्मा की तरह ही होता है।

26. आत्मसंस्थितिः स्वात्मदर्शनम्।
आत्मनिर्द्वयात् आत्मनिष्ठता।।

आत्मा अद्वय होने से आत्मस्वरूप में सम्यक् स्थिति ही आत्मदर्शन है और यही आत्मनिष्ठा है।

27. ज्ञानवर्जिताऽज्ञानहीनचित्।
ज्ञानमस्ति किं ज्ञातुमन्तरम्।।

ज्ञान तथा अज्ञान से रहित चैतन्य ही शुद्ध ज्ञान है। इसे जानने के लिए उससे भिन्न क्या कोई ज्ञान हो सकता है।

28. किंस्वरूपमित्यात्मदर्शने।
अव्ययाऽभवाऽऽपूर्णचित्सुखम्।।

हमारा वास्तविक क्या स्वरूप है ! – इस पर विचार करने पर आत्मदर्शन होकर यह ज्ञात होता है कि मैं अव्यय, अभव, परिपूर्ण और चित्सुखस्वरूप हूं।

29. बन्धमुक्त्यतीतं परं सुखम्।
विन्दतीह जीवस्तु दैविकः।।

परं सुख बन्धन और मुक्ति से परे है, इसे कोई दैवी गुणों से सम्पन्न जीव ही प्राप्त कर सकता है।

30. अहमपेतकं निजविभानकम्।
महदिदं तपो रमणवागियम्।।

अहंकार से रहित, स्वप्रकाशस्वरूपता में जगना ही महान तप है, यह ही 'रमण' की वाणी है।